पाठ्यक्रम में नवाचार
(INNOVATIONS IN CURRICULUM)

सन् 1960 ई० के बाद पाठ्यक्रम-विकास पर पुनर्विचार किया गया। इस क्रम में ब्रूनर, हर्ड आदि विचारकों ने उल्लेखनीय कार्य किया। हर्ड (1969) ने पाठ्यचर्या में नवाचारों (Innovations) को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है—

1. पाठ्यचर्या का निर्माण-कार्य स्थानीय स्तर पर न किया जाय वरन् यह कार्य राष्ट्रीय स्तर पर हो।
2. विषय-वस्तुओं के चयन के लिए अवधारणा (Concept) योजना को आधार बनाया जाय।

Scanned with CamScanner

3. विषय-वस्तु का चयन विशेषज्ञों अथवा अन्वेषकों द्वारा किया जाय।
4. शिक्षण छात्र-केन्द्रित हो तथा सीखने के लिए प्रयोगशाला का प्रयोग किया जाय।

'लर्निंग टू बी' (Learning to be) नामक प्रकाशन द्वारा पाठ्यचर्या में निम्नलिखित तत्त्वों द्वारा बल दिया गया है—

1. विषय-वस्तु का चयन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में होना चाहिए।
2. भिन्न-भिन्न विषयों का एकीकरण होना चाहिए।
3. पाठ्यचर्या द्वारा छात्रों के सामाजिक, भावात्मक तथा आध्यात्मिक पक्षों के विकास पर बल दिया जाना चाहिए।
4. विद्यालयीय पाठ्यचर्या वास्तविकता लिये हो।

उपर्युक्त नवाचारों द्वारा पाठ्यचर्या में अनेक परिवर्तन सम्भव बन पड़े हैं तथा सीखने और शिक्षण की विधियों में नवीन परिवर्तनों को स्थान मिल रहा है। साथ ही पाठ्यचर्या मॉडल बनाने का प्रयास किया जा रहा है जिससे शिक्षा प्रभावी बन सके।

पाठ्यक्रम निर्धारण के लाभ
(ADVANTAGES OF CURRICULUM CONSTRUCTION)

इतिहास का पाठ्यक्रम निर्धारित करने से निम्नलिखित लाभों की प्राप्ति की जा सकती है—

1. कार्य की विस्तृत योजना निर्धारित करने से कार्य सुचारु रूप से चलता है। उससे नियमहीनता को दूर किया जा सकता है।
2. इसके द्वारा कार्य की पुनरावृत्ति को समाप्त किया जा सकता है। हमारे विद्यालयों में बालक स्कूल छोड़ने से पूर्व भारतीय इतिहास की कई बार पुनरावृत्ति करता है। इसका कारण इतिहास के पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में पूर्व-निश्चित योजना का अभाव है।
3. इसके द्वारा बालक की प्रगति की भी परीक्षा होती है कि विद्यार्थी ने कितना ग्रहण कर लिया है और कितना ग्रहण करना शेष है।
4. यह कार्य-कुशलता का पोषक तत्त्व है तथा इसके द्वारा परीक्षा के प्रश्न-पत्रों के बनाने में भी सहायता मिलती है।

तथ्यों के चयन का मनोवैज्ञानिक आधार
(PSYCHOLOGICAL BASIS OF THE SELECTION OF FACTS)

मनोवैज्ञानिक आधार के अनुसार इतिहास-शिक्षा की व्यवस्था अभी विद्यालयों में नहीं हो पायी है। विभिन्न अवस्थाओं की क्षमता का ज्ञान प्राप्त करना और उसके पश्चात् यह पता लगाना कि प्रत्येक अवस्था पर किन तथ्यों की शिक्षा दी जानी चाहिए, यह बड़ा जटिल कार्य है। बालकों की शिक्षा उनके मानसिक स्तर के अनुसार

होनी चाहिए। इतिहास के अध्यापकों तथा पाठ्यक्रम के निर्धारकों का यह मुख्य कर्त्तव्य है कि विभिन्न अवस्था के विद्यार्थी-समूहों के लिए इतिहास की शिक्षा की व्यवस्था करें। शिक्षाशास्त्रियों तथा समाजशास्त्रियों ने इस समस्या को मनोवैज्ञानिक रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया है। इस आधार के अनुसार पाठ्यक्रम बनाने के दो प्रयास किये गये हैं, जिनका विवेचन आगे किया जा रहा है—

1. सांस्कृतिक-युग सिद्धान्त (Culture Epoch Theory)

सांस्कृतिक-युग सिद्धान्त या पुनरावृत्ति के सिद्धान्त के प्रवर्त्तक अमरीका के डॉ० स्टेनले हाल (Stanley Hall) हैं। इन्होंने मानव-जीवन के प्रारम्भिक काल से लेकर वर्तमान काल तक के विकास पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया और मनुष्य के क्रमिक विकास का अध्ययन कर यह निश्चय किया कि मनुष्य अपने जीवन-काल में ही मानव-विकास के सम्पूर्ण क्रमों की पुनरावृत्ति करता है। डॉ० स्टेनले हाल का कथन है कि प्राणी खेल में ही अपनी जाति के विकास की सीढ़ियों को पार करता है। सभ्यता के आदिकाल में मनुष्य की मानसिक स्थिति कदाचित आज के बालकों के समान थी। बालक अपने पूर्वजों के सभी अनुभवों का उत्तराधिकारी होता है। वह सूक्ष्म रूप में उनके समस्त संस्कार लेकर उत्पन्न होता है। इन संस्कारों की अभिव्यक्ति वह अपने खेलों द्वारा करता है। पर इस अभिव्यक्ति की आवश्यकता क्या है इसका उत्तर माँ के उदर में स्थित भ्रूण की विभिन्न अवस्थाओं से मिल सकता है। शरीर-विज्ञानशास्त्रियों का मत है कि भ्रूण अपनी माँ के उदर में सभी प्रधान जीवों की मूल अवस्था को पार करने के पश्चात् मानव-जाति के आकार में आता है। इस सिद्धान्त के अनुसार मानव और जाति के विकास में समानता होती है। इसका अर्थ यह है कि जिन अवस्थाओं में होकर मानव-जाति का सांस्कृतिक विकास हुआ है, व्यक्ति भी अपने जीवन में उन्हीं अवस्थाओं की पुनरावृत्ति करता है, अर्थात् उन्हीं अवस्थाओं में होकर उसका विकास होता है। दूसरे शब्दों में, बालक अपनी बाल्यावस्था के कुछ वर्षों में अपने पूर्वजों की उन सब महत्त्वपूर्ण क्रियाओं को दोहराता है, जिन्होंने आदिकाल से लेकर अब तक मानव-जाति के सांस्कृतिक विकास में योग प्रदान किया है। इसलिए बालक के लिए इतिहास की सामग्री जाति के सांस्कृतिक विकास की उस अवस्था से लेनी चाहिए, जिस अवस्था में होकर बालक गुजर रहा हो। इसका अर्थ यह है कि बालक छोटी अवस्था में हो तो उसे प्रारम्भिक मानव के जीवन की कहानी पढ़ने को देनी चाहिए और यदि वह युवावस्था में हो तो उसे जाति के यौवनकाल का इतिहास पढ़ने को देना चाहिए। इस दृष्टि से इतिहास के पाठ्यक्रम के तथ्यों का चुनाव होना चाहिए।

इस सिद्धान्त के प्रवर्तकों का विश्वास है कि बालक सर्वप्रथम स्वार्थी तथा असभ्य होता है। जो वस्तु उसके हाथ में आती है, वह उसको नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। उसके पश्चात् उसे साहसिक कार्यों से पूर्ण कहानियाँ सुनना रुचिकर होता है, क्योंकि इस स्तर पर वह मनोवैज्ञानिक रूप से रुधिर के प्यासे हिंसक पशु के तुल्य है। इन्हीं बातों के आधार पर इतिहास के तथ्यों का निर्णय करना चाहिए। मानव-जाति की

Scanned with CamScanner

शिशु-अवस्था का इतिहास शिशुओं के लिए उपयुक्त है। बाल्यावस्था का इतिहास बालकों को पढ़ाना चाहिए और मानव-जाति के इतिहास का अन्तिम चरण प्रौढ़ों के लिए उपयुक्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार हम इतिहास शिक्षा की निम्नलिखित रूप से व्यवस्था कर सकते हैं—

1. प्राचीनकाल का इतिहास (प्राइमरी स्तर पर)
2. मध्यकाल का इतिहास (जूनियर-स्कूल स्तर पर)
3. वर्तमान काल का इतिहास (हाई-स्कूल कक्षाओं के लिए)
4. वर्तमान काल का आलोचनात्मक इतिहास (उच्च कक्षाओं के लिए)।

सांस्कृतिक-युग-सिद्धान्त के विपक्ष में तर्क (Arguments against Culture Epoch Theory)—इसके विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं—

1. वैज्ञानिकता की कसौटी पर यह सिद्धान्त खरा नहीं उतरता है। इस सिद्धान्त का वैज्ञानिक विवेचन नहीं हो सकता है और यह सिद्धान्त बहुत कुछ कल्पना के आधार पर निर्मित हुआ है। इसका मूल सिद्धान्त यह है कि बालक स्वत: बर्बर तथा असभ्य है। यह भ्रमात्मक तथा असत्य प्रतीत होता है, क्योंकि बालक बर्बर तथा असभ्य नहीं होता है, बालक का विकास वंशानुगत परम्पराओं तथा वातावरण के अनुसार होता है, जबकि एक बर्बर मनुष्य अपनी वंश-परम्परा तथा वातावरण-विशेष की परिस्थिति के अनुसार पूर्ण विकसित होता है।
2. पाठ्यक्रम में लोचपन होना चाहिए, न कि दृढ़ता। इसमें ऐतिहासिक अन्वेषणों तथा समय के परिवर्तनों को स्थान मिलना चाहिए। इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्यक्रम में नवीन खोजों तथा परिवर्तनों को स्थान नहीं दिया जा सकता है।
3. इस सिद्धान्त के समर्थकों का कहना है कि व्यक्ति तथा जाति के विकास में समानता होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बाल्यावस्था के स्तर पर दोनों में समानता दृष्टिगोचर होती है, परन्तु उसके पश्चात् जब ऐतिहासिक काल आता है, तब उसमें तथा बालक के विकास-काल में कोई समानता नहीं दिखायी पड़ती। इस काल में बालक का विकास तीव्र गति से होता है और बालक के शारीरिक विकास तथा बौद्धिक विकास में सन्तुलन स्थापित नहीं हो पाता।
4. इस सिद्धान्त के विपक्ष में एक तर्क यह दिया जाता है कि समस्त जातियों ने अपने विकास में एक ही मार्ग को नहीं अपनाया, अर्थात् उनका किसी एक ही नियम के अनुसार क्रमिक विकास नहीं हुआ। संसार में ऐसी अनेक जातियाँ हैं जो सभ्यता की दौड़ में दूसरों की अपेक्षा बहुत आगे बढ़ गई हैं। कुछ जातियाँ ऐसी हैं जो बहुत ही पिछड़ी हुई हैं। सम्भव है अनेक ऐसी जातियाँ भी हों, जिन्हें विकास में उतनी कठिनाई का अनुभव न हुआ हो, जितनी कठिनाई का अनुभव अन्य जातियों को हुआ हो।

Scanned with CamScanner

2. जीवन-गाथा सिद्धान्त (Biographical Theory)

यह सिद्धान्त भी मनोविज्ञान पर आधारित है। इसका मुख्य प्रवर्त्तक **कारलाइल** (Carlyle) है। इस सिद्धान्त के समर्थकों का मत है कि इतिहास के तथ्यों का निर्णय जीवन-गाथाओं के अनुसार हो सकता है। उनका विचार है कि महापुरुष अपने समय का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतः उनकी जीवन-गाथाओं को इतिहास के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना चाहिए अर्थात् इन महापुरुषों की जीवन-गाथाओं द्वारा इतिहास की शिक्षा प्रदान की जाय। **कारलाइन** का विचार है कि **"सामान्य पुरुष भेड़ों के झुण्ड के समान हैं और महापुरुष उन शिकारी कुत्तों के समान हैं जो भेड़ों की रक्षा करते हैं।"** इसके समर्थकों का कथन है कि निश्चित क्रम तथा काल के अनुसार इन महापुरुषों के जीवन का क्रमिक इतिहास निर्मित करना चाहिए। उन्होंने आगे कहा कि इतिहास कालक्रम के अनुसार महापुरुषों की जीवन-गाथाओं की एक लड़ी है। विश्व इतिहास भी इसी प्रकार महापुरुषों की जीवन-गाथाओं की एक शृंखला है। जैसा ऊपर कहा गया है कि महापुरुष काल-विशेष के प्रतिनिधि होते हैं, उनके जीवन का अध्ययन करने से उनके समय का पूरा ज्ञान हो जाता है। इन्हीं महापुरुषों द्वारा ऐतिहासिक आन्दोलन प्रभावित होते हैं तथा चलाये जाते हैं। इस सिद्धान्त के परिणामस्वरूप ही इतिहास में वीर-पूजा की उत्पत्ति हुई है। ये महापुरुष मानवता के ऐसे सजग प्रहरी होते हैं जो अपनी प्रजा का सदा नेतृत्व करते हैं और साधारण जनता उनका अनुकरण करती रहती है। जनता में न तो स्वयं इतनी शक्ति है और न इतनी बुद्धि कि वह अपना पथ स्वतः निर्धारित कर सके।

जीवन-गाथा सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Biographical Theory)— जीवनगाथा सिद्धान्त की आलोचना निम्न प्रकार है—

1. यह सिद्धान्त प्रज़ातन्त्र का विरोधी है, यह अधिनायकवाद पर बल देता है और समाजवाद के लिए मार्ग प्रशस्त नहीं करता। इसके अतिरिक्त यह साधारण मनुष्य के विषय में कुछ नहीं कहता है।
2. महापुरुष अपने काल-विशेष के प्रतिनिधि नहीं होते हैं। वे सदैव अपने समय से ऊपर रहते हैं और साधारण समाज से स्पष्टतः पृथक् रहते हैं। वे अपने समय के क्रान्तिकारी तथा विद्रोही होते हैं। वे सदा अपने समय की व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करते हैं। वे महापुरुष अपने क्षेत्र में महान् भले ही हों, परन्तु वे सम्पूर्ण मानव-जीवन की प्रतिभा अथवा विकास का प्रतिनिधित्व नहीं करते।

उपर्युक्त आलोचना में सत्यता का आभास है, फिर भी इस सिद्धान्त से हमें तथ्यों के चयन में पर्याप्त सहायता मिलती है। इतिहास-शिक्षक को इस सिद्धान्त का उपयोग करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए—

1. कोई भी महापुरुष अपने काल-विशेष का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता है। अतः विभिन्न स्तरों के व्यक्तियों की गाथाओं का चयन होना

Scanned with CamScanner

चाहिए। इस प्रकार के चयन का परिणाम यह होगा कि हमारे सम्मुख इतिहास का सर्वांगीण रूप उपस्थित होगा। उसमें शान्ति के पुजारी तथा युद्ध के संचालक दोनों का स्पष्ट चरित्र उपस्थित हो सकेगा।

2. किसी एक महापुरुष की जीवन-गाथा के चयन से तब तक कोई लाभ न होगा जब उसकी जीवन-गाथा के साथ ही साथ उसके मानवीय सिद्धान्तों, शिष्यों, समर्थकों तथा उनकी गतिविधियों का पूरा चित्र न उपस्थित किया जाय। इसके अतिरिक्त विचारों की प्रतिक्रिया पर भी ध्यान देना होगा। यदि हम बौद्ध धर्म के विषय में अध्यापन कर रहे हैं तो केवल गौतम बुद्ध के चरित्र के विषय में बताने से कोई लाभ न होगा, जब तक कि हम उनके शिष्यों, समर्थकों, प्रचारकों तथा विरोधियों के विषय में ज्ञान नहीं देते, अर्थात् हमें अशोक, कनिष्क, हर्ष, कुमारिल भट्ट तथा शंकराचार्य के विषय में भी ज्ञान देना चाहिए। इसके अतिरिक्त उनका विभिन्न व्यक्तियों पर क्या प्रभाव पड़ा, वह भी बताना नितान्त आवश्यक है।
3. इस बात का प्रयत्न होना चाहिए कि इनकी ऐतिहासिकता या ऐतिहासिक आधार समाप्त न हो जाय अर्थात् वे कल्पित कहानी न बन जायें।
4. जिस जीवन-गाथा को चुना जाय, उसको इन बातों की कसौटी पर कस लेना अनिवार्य है। वह जीवन-गाथा या घटना किस काल का इतिहास बताती है तथा इस कथा का वास्तविक उपयोग क्या है, इन बातों को ध्यान में रखकर यदि गाथा का चयन किया जाय तो प्रारम्भिक अवस्था के लिए इतिहास की शिक्षा की व्यवस्था हो सकती है।